मेरी स्वानुभूति तेरी स्वानुभूति

डॉ. कनक लता
मो. 9899795774

“आप हमारे साथ खाना नहीं खा सकते, मुखिया जी!” अध्यापक ने निर्णयात्मक स्वर में ब्राह्मण-जाति के मुखिया से कहा, ‘क्यों मास्टर जी...?” मुखिया ने बड़ी हैरानी से पूछा

“यदि आप हमारे साथ खाएँगे, तो हम खाना नहीं खाएँगे, क्योंकि यह हमारा अपमान होगा। आप हमारे साथ नहीं खा सकते।’ अध्यापक ने पूरी दृढ़ता से कहा मुखिया यह सुनकर अवाक् रह गए, उनका चेहरा फक्क पड़ गया, उनसे कुछ कहते नहीं बन रहा था, अपमान और तिरस्कार के कारण उनकी आँखें भर आई, उनकी आँखों में आँसू तैरने लगे थे। आसपास खड़े लोगों को समझ में नहीं आ रहा था कि ब्राहमण मुखिया के साथ खाना खाने में शिक्षक महोदय को क्यों अपना अपमान महसूस हो रहा है, जबकि ब्राह्मण तो सर्वश्रेष्ठ होता हैं, धरती पर ईश्वर-स्वरूप; यानी भूदेव! इतना ही नहीं शिक्षक महोदय स्वयं भी तो ब्राह्मण ही हैं, फिर वे अपने सजातीय-बंधु के साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं? इसीलिए लोग अधिक हैरान थे, मुखिया के रिश्तेदार भी और अन्य ग्रामीण भी...

...उत्तराखंड में एक प्रसिद्ध धार्मिक-स्थल कोटद्वार है, जिसके एक कस्बे, उसे गाँव कहना अधिक ठीक होगा, में वहाँ के बेहद साधन-संपन्न ब्राह्मण मुखिया मनोहरलाल पैन्यूली के बेटे आशुतोष पैन्यूली की शादी हुई, तो उन्होंने गाँव के सभी लोगों को प्रीति-भोज पर न्योता दिया। गाँव की लगभग सभी जातियों और वर्णों के लोग आमंत्रित थे। उदारता दिखाते हुए मुखिया एवं उनके परिवार वाले गाँव के आसपास के सभी सरकारी विद्यालयों में जाकर उनके विद्यार्थियों को भी उनके अध्यापकों सहित आमंत्रित कर आये थे, जिनमें पास के ही एक सरकारी प्राथमिक पाठशाला के बच्चे भी शामिल थे। वंचित-समाजों से आनेवाले वे अधिकांश छोटे-छोटे बच्चे स्वादिष्ट भोजन की आशा में खुशी के मारे अपनी-अपनी कक्षाओं में शोर मचा रहे थे। अध्यापक भी खुश थे कि एक दिन ही सही, इन अभागे गरीब बच्चों को स्वादिष्ट भोजन तो नसीब होगा! भोजन-माताएँ भी खुश थीं कि उनको एक दिन तो बच्चों के लिए भोजन बनाने से छुट्टी मिली और साथ ही उनको भी आज अच्छा और लजीज खाना खाने को मिलेगा।

इस प्राथमिक विद्यालय में लगभग

36 बच्चे थे और तीन अध्यापक-अध्यापिकाएँ–जमनालाल जगूड़ी, पूनम जैन और पद्मा पुनिया। जब भोज में जाने का समय हुआ, तब अध्यापकों ने एक-दूसरे से सलाह की कि बच्चों को कौन ले जाए। पूनम जैन को शाम की बस से अपनी बेटी के पास जाना था, जो देहरादून में रहती थी। अगले 4 दिन विद्यालय में छुट्टी थी, जिसका लाभ उठाकर वह बेटी और नाती-नातिन से मिल आना चाहती थीं। पद्मा पुनिया के पति की तबियत पिछले कुछ दिनों से कुछ ठीक नहीं चल रही थी, उन्हें चलने-फिरने में भी दिक्कत हो रही थी, बीमारी से काफी कमजोरी आ गई थी, लेकिन ऐसी स्थिति में भी वे चाहकर भी विद्यालय में बच्चों के इम्तिहान नजदीक होने के कारण छुट्टी नहीं ले सकीं थीं। घर में भी पति की देखभाल करनेवाला कोई नहीं था, दो बेटों में से बड़ा बेटा पिछले साल ही शादी के बाद पत्नी को लेकर दिल्ली चला गया था, वहीं उसकी नौकरी लगी थी। छोटे बेटे का अभी-अभी देहरादून में इंजीनियरिंग की तैयारी के लिए एक महँगे कोचिंग में एडमिशन हुआ था, तो वह अपनी पढ़ाई के सिलसिले में वहीं रह रहा था। इसलिए पद्मा जी पति को घर में अकेला छोड़कर आई थीं, हालाँकि उन्होंने अपने पड़ोसियों से उनको देखते रहने का आग्रह किया था, किन्तु चिंता तो फिर भी बनी ही रहती थी। किसी तरह विद्यालय में जैसे-तैसे समय बिताती थीं, लेकिन पूरा ध्यान घर में अकेले बिस्तर पर पड़े पति पर ही लगा रहता था। ऐसे में विद्यालय के बच्चों के साथ भोज में जाने पर अतिरिक्त समय तक रुकना उनके लिए बेहद मुश्किल था।

तीसरे अध्यापक जमनालाल जगूड़ी जी के बच्चे अभी छोटे ही थे। हालाँकि पत्नी भी किसी अन्य विद्यालय में अध्यापिका थीं और पति के बाद ही घर पहुँचतीं थी। दरअसल उनका घर उनके विद्यालय से मात्र 15-16 किलोमीटर की दूरी पर था, जबकि उनकी पत्नी घर से लगभग 28 किलोमीटर दूर स्थित विद्यालय में कार्यरत थीं। दोनों की सरकारी नौकरी थी, जिसके इतने फायदे हैं कि दोनों में से कोई अपनी नौकरी छोड़ना नहीं चाहता था। साथ ही, कोटद्वार में रहने का फैसला पति-पत्नी ने बच्चों की बेहतर पढ़ाई एवं कुछ बेहतर शहरी-सुविधाओं के मद्देनजर भी किया था, क्योंकि शहर होने के कारण वहां कुछ अच्छे स्कूल हैं, जहाँ वे अपने बच्चों को कुछ बेहतर शिक्षा दिला सकते थे। सरकारी विद्यालयों में तो अपने बच्चों को पढ़ाने के विषय में वे सोच ही नहीं सकते, जिनकी हालत अब ऐसी नहीं रही कि अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा का सपना देखनेवाले माता-पिता उनकी ओर देखें भी। इसलिए तनिक भी मजबूत आर्थिक-स्थिति वाले माता-पिता प्राइवेट स्कूलों की ओर ही देखते हैं। सरकारी विद्यालयों में तो बस वही बच्चे अब नजर आते हैं, जिनके माता-पिता की आर्थिक स्थिति बहुत अधिक खराब है या फिर वंचित-समाज के बच्चे, अधिकांशत: जिनके माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा और बेहतर भविष्य के प्रति शायद चिंतित नहीं रहते हैं, क्योंकि उन्होंने यह मान लिया है कि पढ़-लिखकर भी उनके बच्चों को आखिरकार वही करना है, जो खुद अनपढ़ रहकर वे कर रहे हैं।

...तो अपने-अपने विद्यालयों से पति-पत्नी में से जमनालाल जी पहले घर पहुँचते थे और पत्नी सविता लगभग पौन घंटे बाद। जमनालाल जी लौटते हुए अपने दोनों बच्चों, 8 वर्षीया सौम्या और 12 वर्षीय शिशिर को स्कूल से अपनी बाइक पर ही लेते आते थे, जो रास्ते में ही पड़ता था। जब तक पत्नी घर पहुँचती थीं, तब तक बच्चे खा-पीकर खेलने में मग्न हो चुके रहते थे, लेकिन आज विद्यालय में उन गरीब और मजलूम बच्चों को गाँव के मुखिया की ओर से भोजन का निमंत्रण मिला था, अधिकतर बच्चे भी अच्छे और स्वादिष्ट भोजन पाने की सोच-सोचकर बेहद उत्साहित थे। दोनों ही कारणों से इस निमंत्रण को अनदेखा नहीं किया जा सकता था। अत: तय हुआ कि जमनालाल जी बच्चों को लेकर मुखिया के घर दावत पर जाएँगे। उन्होंने अपने एक पडोसी को फोन करके अपने बच्चों को स्कूल से ले आने को कह दिया, पत्नी भी थोड़ी देर में घर आ ही जाती।

तय समय पर मास्टर जमनालाल जी 36 विद्यार्थियों को लेकर गाँव की ओर चले, मुखिया मनोहरलाल पैन्यूली जी के घर की ओर, जहाँ दावत थी। रास्ते भर बच्चे शोर मचाते रहे कि इस दावत में क्या-क्या बना होगा, वे क्या-क्या और कितना-कितना खाएँगें, पिछली बार उन्होंने कब किसी दावत में अच्छा खाना खाया था... आदि! इन अभागे बच्चों की बातें सुनकर जमनालाल जी का दिल कचोटने लगा, 'क्या ये बच्चे इतने बदनसीब हैं कि उनको भरपेट भोजन भी नसीब नहीं हो सकता?', '...कि उनके सपनों में एक अच्छा भोजन बसता है, एक सुन्दर भविष्य नहीं, एक अच्छा करियर नहीं, वैज्ञानिक, डॉक्टर, अध्यापक, इंजीनियर,

आदि बनने की ख्वाहिशें नहीं? लेकिन वे या उन जैसे लोग कर भी क्या सकते हैं, जब कोई समाज ही यह ठाने बैठा हो कि उसे भूखे-असहाय गुलामों की एक बड़ी-सी फौज चाहिए, जो भूख से लड़ते हुए उसके सामने सदैव सिर झुकाए खड़ी रहे, जिससे समाज के कुछ वर्गों को अपने 'दाता' होने का, 'भाग्य-विधाता' होने का, 'स्वामी' होने का अनिर्वचनीय आनंद मिलता रहे...?'

मुखिया का घर आ गया, घर क्या था, एक तरह से महल ही था। ईश्वर ने उनपर अपनी भरपूर कृपा बरसाई थी... जैसाकि ईश्वर हमेशा से करते आये हैं! वे भारत में सवर्णों पर ही अपनी कृपा बरसाते आए हैं, इसके बाद तो उनके पास गरीबों-वंचितों पर बरसाने के लिए कुछ बचता ही नहीं, ईश्वर भी बेचारे करें तो क्या करें, कहाँ से लायें वंचितों और गरीबों पर बरसाने के लिए? मुखिया का पूरा घर रंग-बिरंगे फूलों और आम के पत्तों से सजा हुआ था, बाहर विशाल मैदान में चारों तरफ अलग-अलग रंगों और डिजाइन के शामियाने लगे थे, रंग-बिरंगी झालरों से पूरा इलाका सजा हुआ था, चटकदार झंडियाँ भी जगह-जगह लगाई गई थीं, गेंदे और गुलाब सहित अनेक प्रकार के फूलों के खूबसूरत तोरण और बंदनवार लगाए गए थे, जिनकी सुगंध किसी के भी मन को विभोर कर देने को काफी थी। तरह-तरह के रंग-बिरंगे नए कपड़ों में सजे लोग आ-जा रहे थे, चारों ओर खूब चहल-पहल थी– यानी चारों तरफ अकुंठ खुशी का माहौल था। मुखिया और उनके नाते-रिश्तेदार मलमल और रेशमी कपड़े पहने, अपने-अपने सिरों पर खूबसूरत गुलाबी पगड़ी बाँधे, अपने गुलाबी चेहरों पर मुस्कराहट चिपकाए सभी आदरणीय मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। चारों ओर तरह-तरह के व्यंजनों की फैली खुशबू जैसे सभी को अपनी ओर खींच रही थी...

ठीक इसी समय मास्टरजी भी अपने छात्र-छात्राओं के साथ वहाँ पहुँचे। वे सब वहाँ एक जगह खड़े होकर भीड़ में मुखिया या उनके घरवालों में से किसी पहचानवाले को ढूँढने लगे। इसी बीच मुखिया जी, जो थोड़ी ही दूरी पर मेहमानों से बात कर रहे थे, की नजर उन लोगों पर पड़ी, वे लपककर वहाँ आये और अध्यापक और बच्चों का स्वागत किया और वहाँ आने के लिए धन्यवाद दिया। बच्चे वहाँ की रौनक देखकर हैरान थे, वे यही नहीं समझ पा रहे थे कि इतने लोग कहाँ से आ गए। कुछ बच्चों को यह सवाल परेशान कर रहा था कि इतने सारे फूल कहाँ से आये होंगे, किस गाड़ी में भरकर इतने सारे फूल लाये गए होंगे, इतने सारे फूलों की माला बनाने में कितने दिन लगे होंगे ...वगैरह-वगैरह...!

इसी बीच बच्चों का ध्यान विभिन्न प्रकार के व्यंजनों की खुशबू की ओर गया, बच्चे अनुमान लगाने लगे कि किन-किन व्यंजनों की खुशबुएँ आ रही हैं। बच्चों की बातें सुनकर मुस्कुराते हुए मुखिया ने शरबत परोसनेवाले एक सेवक को आदेश दिया कि वह बच्चों को शरबत पिलाए। सेवक अपने कई सहयोगियों के साथ कई ट्रे में रंग-बिरंगी शरबतों से भरे दर्जनों गिलास ले आया। रंग-बिरंगी शरबत देखकर बच्चों के बीच होड़ मच गई कि कौन किस रंग की शरबत पिएगा। इस चक्कर में छीना-झपटी के बीच शरबत के दो-तीन गिलास नीचे गिर पड़े, लेकिन गनीमत थी कि वे डिस्पोजल गिलास प्लास्टिक के थे, इसलिए टूटे नहीं और बच्चे चोटिल नहीं हुए। अध्यापक बच्चों का यह व्यवहार देख थोड़े झेंप-से गए और उनको डाँटती-सी नजर से देखकर इशारे से शरारतें करने से मना किया। लेकिन मुखिया विनोद से हँस पड़े और कहा, "कोई बात नहीं मास्टरजी, बच्चे ही हैं।" मास्टर साहब को भी साथ देने के लिए मजबूरी में उनके साथ हँसना पड़ा।

शरबत पी लेने के बाद मुखिया ने कुछ देर बच्चों को वहाँ घूमने और चारों ओर की रौनक और सजावट देखने को कहा, क्योंकि अभी कुछ लोग खाना खा रहे थे। मास्टरजी ने बच्चों को शांति बनाए रखने और एक साथ रहने की हिदायत के साथ समारोह-स्थल में घूमने की इजाजत दे दी। दावत की खुशी में स्कूल में भी खाना नहीं खाने के कारण भूख से व्याकुल और भोजन की खुशबू से उतावले हो रहे बच्चे किसी तरह अपने मन को समझाते हुए समारोह-स्थल की रौनक और सजावट देखकर अपने मन को बहलाने की कोशिश करने लगे। मास्टरजी गाँव के अन्य लोगों से मिलने और बात करने लगे, विद्यालय की कुछ समस्याओं का हल निकालने के लिए उनको ग्रामीणों और मुखिया से मदद की जरूरत थी। अन्य सरकारी स्कूलों से आये बच्चों में से कुछ तो अलग-अलग स्थानों पर खाना खा रहे थे, कुछ खाने के बाद शरबत की चुस्कियाँ ले रहे थे, तो कुछ मिठाइयों का आनंद ले रहे थे। कुछ बच्चे उन्हीं की तरह बाहर घूमते हुए खाने के लिए अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे। जो बच्चे खाना खा चुके थे, वे व्यंजनों के

प्रकार और उनके विभिन्न स्वादों के बारे में रस ले-लेकर एक-दूसरे को बता रहे थे। भूखे बच्चे उनकी बातें सुनकर किसी तरह अपनी जीभ और पेट को सांत्वना देने की असफल कोशिशों में जुटे थे।

थोड़ी देर बाद मुखिया के एक नौकर ने आकर बच्चों से कहा, ‘अब तुमलोग खाना खाने चल सकते हो।” बच्चे बेसब्र हो उठे, वे अपने गुरुजी को ढूँढने लगे, ताकि वे उनको खाना खाने की अनुमति दे सकें और उनके साथ भोजन-स्थल पर चल सकें। मास्टरजी कुछ दूरी पर ही दूसरे विद्यालय के अध्यापकों और गाँव के ही दो-तीन अभिभावकों के साथ अपने विद्यालय की किसी समस्या पर चर्चा में तल्लीन थे। बच्चों ने उन्हें ढूँढ लिया और भागे-भागे उनके पास गए और बताया कि उनको खाने के लिए बुलाया गया है। बच्चों की व्यग्रता देखकर मास्टरजी उनके साथ चल पड़े। भोजन-स्थल पर कुछ लोग पंगत में बैठ चुके थे, लेकिन अभी भी बहुत जगह खाली थी। मास्टरजी ने बच्चों को बैठने के लिए कहा, बच्चे खुशी से चहकते हुए अपना-अपना स्थान लेने को दौड़े, लेकिन तभी मुखिया के बड़े साले ने बच्चों को डाँटते हुए रोक दिया। उनके मास्टरजी वहीं खड़े सब देख रहे थे। वह व्यक्ति बच्चों से बारी-बारी से एक-एक करके उनकी जाति पूछने लगा और उनकी जाति पूछते हुए उनमें से कुछ बच्चों को वहीं बैठकर सबके साथ खाने की अनुमति दी और कुछ बच्चों को उस जगह जाकर खाना खाने को कहा, जो उनके लिए खासतौर पर बनाया गया था, ये बच्चे वंचित समुदायों से थे। यह सब देख रहे शिक्षक महोदय ने इसका विरोध किया, तो वहाँ उपस्थित लोग मास्टरजी को समझाने लगे, ‘अरे मास्टरजी, जब भगवान ने ही सबको बराबर नहीं बनाया है, तो हम कौन होते हैं। भगवान के विधान का विरोध करनेवाले..?”

‘हमारे ऋषि-मुनियों की बनाई गई परंपरा है ये तो, गलत कैसे हो सकती है? यदि ये गलत होता, तो हमारे महान ऋषि-मुनि ऐसी परंपरा बनाते ही क्यों? आप हमारे ऋषि-मुनियों से तो अधिक नहीं जानते ना, मास्टरजी!’

‘अरे मास्टरजी, अब भगवान के विधान को तो गलत मत ही कहो आप. ..!’ लेकिन मास्टरजी नहीं माने। बच्चे सहमे हुए इस पूरे प्रकरण को देख रहे थे। उनकी आँखों में उदासी और मायूसी थी। जिन बच्चों को किसी और स्थान पर बैठने को कहा जा रहा था, उनकी आँखों में एक अलग भाव दिख रहा था, जो तिरस्कार, उपेक्षा और अपमान से उपजता है। शायद उन बच्चों ने अपनी बाल-बुद्धि से भी यह ‘समझ’ लिया था कि वे समाज में बाकी लोगों के साथ बैठने के ‘लायक’ नहीं हैं। उनकी आँखें बुझी हुई थीं, उनमें भोजन के लिए अब वो ललक नहीं दिख रही थी, जो थोड़ी देर पहले थी।

...और उनके वे छोटे-छोटे दोस्त एवं सहपाठी, जिनको वहीं बैठने को कहा गया था, यानी उच्च-वर्णीय बालक-बालिकाएँ...? वे क्या सोच रहे थे? उनकी आँखों में जैसे कोई शिकायत तैर रही थी उन लोगों के विरुद्ध, जो उनके दोस्तों और सहपाठियों को उनसे अलग देख और समझ रहे थे। विद्यालय में साथ-साथ पढ़ते, खेलते, खाते हुए उन छोटे-छोटे बच्चों के कोमल मन में अभी तक वह भावना ठीक से उत्पन्न नहीं हो पाई थी, जो किसी को अपने ‘उच्चवर्णीय’ और ‘विशिष्ट’ होने का एहसास दिलाती है, तो किसी को ‘निम्नवर्णीय’ और ‘दीन-हीन’ होने का। ये बच्चे भी जैसे स्वयं अपने ही पेट की भूख से नाराज-से हो रहे थे, अपने दोस्तों को अपमानित और तिरस्कृत होते देख शायद उनकी भी खाने की इच्छा जैसे बुझने लगी थी...

हालाँकि ये सभी बच्चे, सामाजिक-संरचना और उसकी व्यवस्थाओं को समझने के लिए अभी बहुत छोटे थे, मगर उनमें से कुछ को समाज से अक्सर मिलनेवाले तिरस्कार एवं अपमानजनक व्यवहार और कुछ को विशेष सम्मानजनक भाव ने उनको धीरे-धीरे यह तो जताना शुरू कर ही दिया था कि उनमें से कौन विशेष-वर्ग का है, कौन सामान्य-मनुष्य है और किसकी हैसियत गंदगी में रहनेवाले बदबूदार जानवरों से भी कमतर है। आखिर समाज ऐसे ही तो अपने बालक-बालिकाओं को भविष्य के लिए प्रशिक्षित करता है! उसके लिए कोई अलग से पाठशाला थोड़े न होती है? पाठशालाएँ, आधुनिक लोकतान्त्रिक पाठशालाएँ, तो मानवीय मूल्य और उनके नैसर्गिक एवं संवैधानिक अधिकारों की शिक्षा देने के लिए बनाई जाती हैं। लेकिन समाज की परंपराओं और धर्म के रक्षकों में से किसी ने भी उनमें से किसी भी बच्चे के किसी भी मनोभाव को न तो देखा, न समझा, न देखने-जानने की जरूरत समझी– न उनके द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत बच्चों के, न अपने ही उच्चवर्णीय सम्मानित समाज के बच्चों के। लेकिन शिक्षक महोदय सब देख और समझ रहे थे। उन्हें अपने प्रत्येक विद्यार्थी की मन:स्थिति ज्ञात थी।

इसीलिए, और शिक्षक होने के दायित्वों के कारण भी, उन्होंने दृढ़ता से अपनी बात रखी, “यदि आपलोगों को मेरे वंचित–तबकों के विद्यार्थियों के साथ भोजन करने में आपत्ति है, तो आपलोग हमारे साथ भोजन मत कीजिए। लेकिन मेरे सभी विद्यार्थियों और मेरे लिए एक साथ बैठने की व्यवस्था कर दीजिए, जहाँ भी आपलोगों को ठीक लगे, मेरे विद्यार्थी अलग–अलग समूह में भोजन नहीं करेंगें, बल्कि वे सब और मैं एक साथ ही खाना खाएँगे...।” विवाद बढ़ता देखकर वे चाहते थे कि बीच का कोई रास्ता निकल जाए, लेकिन वे किसी भी कीमत पर अपने विद्यार्थियों को जातियों के आधार पर अलग–अलग समूहों में बिठाकर खाना खिलाने के पक्ष में नहीं थे, इसलिए वे सबको समझाने की कोशिश कर रहे थे, ‘विद्यालय में मेरे सभी विद्यार्थी एक साथ रहते हैं, एक साथ पढ़ते हैं, साथ–साथ खेलते हैं, यहाँ तक कि सभी बच्चे विद्यालय में एक साथ एक ही जगह बैठकर खाना भी खाते हैं। हम अपने विद्यार्थियों में भेद नहीं करते। आखिर पढ़ने–पढ़ाने का फायदा ही क्या, जब हम इन चीजों से ऊपर ही नहीं उठ सकें?’

शिक्षक महोदय ने सबको समझाने की कोशिश करते रहे, लेकिन लोग इस बात पर अड़ गए कि ऐसा करना धर्म–विरुद्ध होगा। मुखिया के साले साहब का तर्क था–“बात तो एक ही होगी, मास्टरजीऽऽ...! जो बच्चे ऊँची जाति के हैं, यदि वे इन नीच जात वालों के साथ खाना खाएँगे, तो उनका धर्म तो भ्रष्ट होगा ही नाऽऽ..!” पास खड़े पंडित जी ने धर्म के सामने खड़ी विकट स्थिति की गंभीरता को स्पष्ट करने का प्रयास किया– “और फिर जब उच्च–वर्ण के बालक–बालिकाएं अपना धर्म भ्रष्ट करवाकर अपने–अपने घरों को जाएँगे, तो वहाँ घरवालों का धर्म भी भ्रष्ट कर देंगें।” आदि

अभी यह वाद–विवाद चल ही रहा था कि मुखिया वहाँ आ गए, किसी ने उनको बता दिया था इस विवाद के बारे में। उन्होंने भी मास्टरजी को दुनिया और धर्म का ऊँच–नीच समझाने के बहुत प्रयास किए, वे नहीं चाहते थे कि इन वंचित–अछूत बच्चों के कारण उनके गणमान्य मेहमानों और रिश्तेदारों के सामने उनकी इज्जत मिट्टी में मिले, इलाके में उनकी ठसक और रुतबे पर आँच आए। इसलिए उन्होंने मास्टरजी को समझाने की कोशिश की, हालाँकि मीठी भाषा में ही– “मास्टरजी, हम आपकी भावना समझते हैं, आपको अपने विद्यार्थियों से लगाव है यह भी जानते हैं। लेकिन समाज के नियमों का पालन भी तो जरूरी है।” मास्टरजी ने मुखिया के सामने भी अपना उपरोक्त प्रस्ताव दुहराया, जिसमें उनकी नाक भी ऊँची बनी रहेगी और उनके वंचित–विद्यार्थियों को भी इस तरह अपमानित न होना पड़ेगा। लेकिन मुखिया ने अपना स्पष्ट निर्णय सुनाया कि बच्चे अपनी–अपनी बिरादरी के अनुसार ही उनके लिए निर्धारित अलग–अलग स्थानों पर बैठाए जाएँगे।

तब मास्टरजी ने मन–ही–मन एक निर्णय लिया, एक कठोर निर्णय...! उन्होंने अपने सभी विद्यार्थियों को अपने पास बुलाया, जब सहमे हुए विद्यार्थी आ गए, पंगत में बैठाए गए बच्चे भी; तब उन्होंने मुखिया से कहा–“मुखिया जी, अब मेरा कोई भी विद्यार्थी या मैं आपके इस कार्यक्रम में भोजन नहीं करेंगें और अब हम वापस जा रहे हैं।” इतना कहकर बिना किसी की ओर देखे वे अपने सभी विद्यार्थियों को साथ लेकर विद्यालय की ओर चल पड़े।

इस एकाएक निर्णय और परिस्थिति से मुखिया सहित सभी लोग सकते में आ गए। किसी को यह तनिक भी उम्मीद नहीं थी कि गुरुजी ऐसा कुछ कर सकते हैं! मुखिया यह सोचकर ही परेशान हो उठे कि यदि बच्चे उनके दरवाजे से बिना खाना खाए वापस लौट गए तो पूरे गाँव में उनकी किरकिरी होगी। बच्चों को तो उन्होंने खुद ही विद्यालय जाकर आमंत्रित किया था, ऐसे में उनको भूखा वापस लौटाना किसी भी तरह उचित नहीं था। लोग कहेंगे कि ‘मुखिया ने बच्चों को बुलाकर खाना खिलाए बिना ही वापस लौटा दिया।’ इसके बाद गाँव में क्या इज्जत रह जाएगी उनकी? धर्म की दुहाई देनेवाले यही लोग सालों तक थू–थू करेंगे उनपर। यह सोचकर ही उनके हाथ–पाँव फूलने लगे। तब उन्होंने तुरंत आगे बढ़कर मास्टरजी और बच्चों के आगे खड़े होकर उनका रास्ता रोका और मनाने की कोशिश की– “मास्टरजी, प्लीज इस तरह बच्चों को भूखा वापस मत ले जाइए। यह ठीक नहीं है। मेरे दरवाजे से ये बच्चे भूखे लौट गए तो मैं किसी को क्या मुँह दिखाऊँगा।” उन्होंने हाथ जोड़कर मिन्नतें की। लेकिन मास्टरजी अब वहाँ न तो स्वयं ही खाना खाने को तैयार थे और न ही अपने विद्यार्थियों को खिलाने को। इसलिए उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा– “माफ कीजियेगा मुखिया जी, लेकिन मैं मजबूर हूँ। मैं अपने प्रत्येक विद्यार्थी का शिक्षक हूँ। ये सभी बच्चे मेरे ही भरोसे पर यहाँ आये हैं, इसलिए इनके सम्मान या

अपमान के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। मैं यह हरगिज बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरे उन विद्यार्थियों का अपमान हो, जो अपने जन्म के कारण आप लोगों के द्वारा निम्न समझे जाते हैं। इसमें इन बच्चों का क्या दोष? जो व्यवहार अपने विद्यालय में हम नहीं करते, उसकी इजाजत मैं किसी और को कैसे और क्यों दे दूँ? इसलिए अब हम यहाँ खाना नहीं खा सकते!" शिक्षक ने अपना तर्क पूरे आत्मविश्वास से दिया।

सबको साँप सूंघ गया। मुखिया की हालत यह थी कि काटो तो खून नहीं। उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। मास्टरजी पुनः बच्चों को लेकर चल चुके थे, भूखे-प्यासे, उदास और मायूस बच्चे अपने मास्टरजी के पीछे-पीछे सिर झुकाए चुपचाप चल दिए। यदि कोई बाल-मनोवैज्ञानिक उन बच्चों के मनोभावों का उस समय विश्लेषण कर पाता, तो उसे साफ-साफ दिखाई देता कि बच्चों के मन में अपने मास्टरजी के लिए उस समय कितना आदर और विश्वास भर गया था, इसके बावजूद, कि वे सब भूखे थे और खाना न मिल पाने से क्षुब्ध भी!

मुखिया पुनः उनके पीछे दौड़े– "मास्टरजी, मास्टरजी! प्लीज रुक जाइए! चलिए, वापस चलिए! जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही होगा! ये सभी बच्चे एक साथ ही बैठकर खाना खाएँगे... और मैं भी इन बच्चों के साथ ही बैठकर खाऊँगा! प्लीज, वापस चलिए!" कोई उपाय न देखकर सहज ही उन्होंने कह दिया, आखिर उनका सम्मान दाँव पर जो लगा था। कहीं-न-कहीं उनका मन भी, छोटे-छोटे बच्चों को भूखा-प्यासा वापस लौटाने के लिए उस अपराध को सहज ही महसूस कर रहा था, अपने जातीय-श्रेष्ठता के अहंकार के बावजूद। मुखिया के बड़े बेटे और दोनों सालों ने भी और तमाशबीनों में मुखिया के रिश्तेदारों और कुछ प्रतिष्ठित ग्रामीणों ने भी मुखिया की तरह सभी बच्चों के साथ खाना खाने की हॉमी भरी। मास्टरजी ने कुछ नहीं कहा, मुखिया ने पुनः हाथ जोड़कर आग्रहपूर्वक कहा– "मास्टरजी, हमने आपकी बात मान ली, अब आप भी कृपा करके मान जाइए। बच्चों को देखिए, कैसे इनके चेहरे उतरे हुए हैं। हमारी नहीं, तो इन बच्चों की सोचिए. ..! प्लीज, अब चलिए, ज्यादा मत सोचिये!" मुखिया के बेटे और सालों ने भी हाथ जोड़कर प्रार्थना की, गाँववालों ने भी मास्टरजी को मनाने के लिए विनती की। मास्टरजी ने अपने विद्यार्थियों की ओर देखा, उन्होंने कुछ सोचा और मन-ही-मन कुछ निश्चय किया। लेकिन वे क्या सोच रहे थे, उनके अलावा कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता था। उन्होंने हामी भर दी, बच्चों के सूखे-मुरझाये मायूस चेहरों पर थोड़ी-सी चमक दिखी, लेकिन वे अभी भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे कि आज उनको समारोह में खाना मिलेगा ही, उनके नन्हें-हृदय और उनकी बाल-बुद्धि को थोड़ी देर पहले ही मिला कड़वा-अनुभव तो यही कहता था!

मुखिया सबको आग्रह सहित भोजन-स्थल पर उसी पंडाल में ले आए, जहाँ से मास्टरजी और बच्चे वापस लौटे थे। उन्होंने खुद सभी बच्चों को बिठाया और उनके सामने अपने हाथों से थर्मोकोल की प्लेटें लगाई, मास्टरजी और अपने लिए भी अगल-बगल प्लेटें लगाई। उनके बड़े बेटे ने सबकी प्लेटों के साथ ही थर्मोकोल के गिलास रखे और उसमें पानी भरा। गरमागरम खाना आने लगा और कई सारे व्यंजन देखते-ही-देखते सभी की प्लेटों में सज गए। लेकिन थोड़ी देर पहले घटित अवाछिंत घटना से सहमे बच्चे, भूख के बावजूद, भोजन में हाथ नहीं लगा पाए। वे अपने गुरुजी की ओर ही निहार रहे थे कि उनके गुरुजी खाना शुरू करें, तब वे भी आश्वस्त हों और खाना शुरू करें। मुखिया जी, जो अपना पहला निवाला उठा चुके थे, ने और अन्य सभी लोगों ने बच्चों की दुविधा को समझा, लेकिन कोई कुछ बोला नहीं। उनके गुरुजी अपने बच्चों के चेहरों के मनोभावों को लगातार पढ़ रहे थे, जिनपर कई तकलीफदेह रेखाएँ बन-बिगड़ रही थीं, मगर फिर भी उन्होंने खाना शुरू नहीं किया। तब मुखिया ने टोका– "मास्टरजी, खाना शुरू कीजिए, प्लीज! बच्चे आपका मुँह देख रहे हैं! शायद आपके शुरू किए बिना ये नहीं खाएँगे।" मुखिया ने आग्रहपूर्वक कहा। लेकिन अध्यापक महोदय ने कोई उत्तर नहीं दिया, उत्तर न पाकर मुखिया ने फिर से हाथ जोड़कर विनती के स्वर में कहा–' "क्या हुआ मास्टर जी? क्या अभी भी आप नाराज हैं? प्लीज अब तो गुस्सा थूक दीजिए!" मास्टरजी ने मुँह खोला और अचानक अपना फैसला सुनाया, एक अनोखा फैसला, जिसकी उम्मीद भी किसी को नहीं थी– "मुखिया जी, यदि आप हमारे साथ खाना खाएँगे, तो हम नहीं खाएँगें।" मुखिया को काटो तो खून नहीं! उनका चेहरा फक्क पड़ गया! उठे हुए हाथ का निवाला हवा में ही रह गया। भोजन में साथ ही बैठे मुखिया के बड़े बेटे ने आश्चर्य से पूछा– "ये आप क्या कह रहे हैं, मास्टरजी?" लेकिन मास्टरजी ने पूरी दृढ़ता के साथ

निर्णयात्मक तरीके से अपनी बात दोहरा दी– "जी, मैं यही कह रहा हूँ... कि मुखिया हमारे साथ खाना नहीं खा सकते! यही नहीं आपलोग भी हमारे साथ खाना नहीं खा सकते! यदि आपलोगों में से कोई भी व्यक्ति हमारे साथ खाना खाएगा, तो मैं या मेरे विद्यार्थी नहीं खाएँगे!" इस अपमान से आहत होकर मुखिया के बेटे ने कहा– "मास्टरजी, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?" अपने पिता और अन्य लोगों के तिरस्कार पर उसके चेहरे पर तनाव और परेशानी की वजह से पसीने की बूंदें माथे परं उभर आई थीं।

लेकिन मुखिया इस अपमान और तिरस्कार से आहत होकर नि:शब्द थे, जिससे उत्पन्न पीड़ा से उनकी आँखें भर आई। इस अचानक उत्पन्न स्थिति से बाकी लोग भी हैरान और अवाक् थे। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि मास्टरजी को अपने वंचित-तबकों के बच्चों के साथ ऊँची-जाति के लोगों के साथ खाना खाने में क्यों आपत्ति है। आपस में कानाफूसी शुरू हो गई। यदि ऊँची-जाति के लोग नीच-जात के लोगों के साथ खाना खा लें, तो ये नीची-जात वाले इसे अपना परम सौभाग्य समझते हुए सालों तक हमारे चरण धो-धोकर पीयेंगे, सालों तक हमारी पूजा करेंगे, हमारा एहसान मानेंगे। और ये दो कौड़ी का मास्टर ऊँची-जाति के लोगों को अपने नीच-जात वाले बच्चों के साथ खाने से मना करके हमारा अपमान कर रहा है?''

समारोह-स्थल में एक कान से होते हुए दूसरे कान तक यह खबर जंगल की आग की तरह फैल चुकी थी। लोग, मानव-स्वभाव के मुताबिक ही, तमाशा देखने के लिए एकत्र होने लगे थे। थोड़ी देर में ही भीड़ काफी बढ़ गई थी। कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था। मास्टरजी को मनाने की कोशिशें चल रही थी, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा, बस लोगों की प्रतिक्रियाओं को चुपचाप देखते रहे। अब मुखिया के बड़े साले ने बाहर बढ़ती भीड़ को देखकर और हालात की नजाकत को समझकर नर्म पड़ते हुए हथियार डालने की-सी मुद्रा में आकर हाथ जोड़कर पूछा– "मास्टरजी, अब क्या बात हो गई, कुछ तो बताइए! आप हमारे साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं?" अब मास्टरजी ने चुप्पी तोड़ते हुए बड़ी ही गंभीरतापूर्वक दो टूक बात कही– "यदि आपलोग हमारे साथ खाना खाएँगे, तो यह हमारा अपमान होगा!" हर चेहरे पर आश्चर्य था, हर मन में सवाल– 'भला यह कैसी असंभव बात हुई?'

मुखिया के छोटे साले साहब ने, हालात की गंभीरता को समझने के बावजूद, अहंकारवश सीना तानकर कहा– "अरे मास्टरजी, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? हम तो बड़ी जाति के हैं, हमारे साथ खाना खाने में आपका और आपके विद्यार्थियों का अपमान कैसे हो सकता है? यह तो इन छोटी जात वालों का सौभाग्य है कि हम उनके बच्चों को अपने साथ बिठाकर खिला रहे हैं।" यह कहकर उसने कुछ घृणा से, तो कुछ तिरस्कार से मास्टरजी के वंचित-विद्यार्थियों और भीड़ में कुछ अलग खड़े वंचित-समुदायों की ओर देखा...।

बस इसी पल का मास्टरजी को इंतजार था शायद, उन्होंने अब अपनी मास्टरी लाठी, शिक्षा की लाठी, संभाली और अपनी-अपनी ऊँची-जातियों पर इतराने वाले अहंकारियों को धराशायी करना शुरू किया– "जिन लोगों की सोच इतनी घटिया हो, मेरी नजर में वे सब घृणित, गंदे और बदबूदार जानवरों की तरह हैं! और आप लोगों को तो अच्छी तरह मालूम है कि ऐसे जानवरों के साथ सभ्य लोग खाना नहीं खाते! मैं और मेरे ये सभी विद्यार्थी पढ़ते-लिखते हैं, सभ्य हैं, सुसंस्कृत हैं। तो भला हम आपलोगों जैसे गंदे, बदबूदार और घृणित जानवरों के साथ खाना खाकर अपने-आप को अपमानित कैसे करवा सकते हैं?" मास्टरजी ने बिना झिझके एक-एक शब्द पर भरपूर जोर देते हुए कहा। उस समय उनके चेहरे पर एक खास किस्म की चमक देखी जा सकती थी।

अब मुखिया रो पड़े, कुछ पल के बाद उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर एकदम दयनीय भाव से प्रार्थना की– "मास्टरजी, भगवान् के लिए मुझपर दया कीजिये! प्लीज मेरे साथ ऐसा मत कीजिए! मैं कहीं मुँह दिखाने के लायक नहीं रहूँगा!" ब्राह्मणत्व के अहंकार का मुकुट उनके सिर से नीचे गिर चुका था। उनके बड़े बेटे ने भी हाथ जोड़कर विनती की–"मास्टरजी, कृपया आप हमें इतना जलील मत कीजिए!" मुखिया ने करुण-स्वर में कहा– "मैंने और मेरे लोगों ने इन बच्चों को दुत्कारा, भगवान उसी की सजा मुझे दे रहा है...!"

मास्टरजी अब मुखिया से मुखातिब हुए और बड़ी ही गंभीर वाणी में उनसे कहना शुरू किया–"मुखिया जी, अब आप एकदम ठीक समझ रहे हैं! कुछ ऐसा ही मेरे इन मासूम नन्हें विद्यार्थियों ने तब महसूस किया था, जब आपने और आपके लोगों ने इनको जलील करके अलग खाना खाने को कहा था।" उनकी बात सुनकर मुखिया का मुँह खुला-का-खुला रह गया। अध्यापक ने कहना जारी रखा– "...बल्कि रोज

ही ये उस पीड़ा और अपमान को महसूस करते हैं, जब-जब इनको 'अछूत', 'नीच', 'सूअर', 'गंदे-गलीज', 'जानवरों से भी गया-बीता'... वगैरह-वगैरह आपलोग और हमारा ये तथाकथित सभ्य-समाज कहता है...!" इतना कहकर वे थोड़ी देर के लिए रुके और सबके चेहरों को पढ़ते रहे, कुछ पल बाद पुन: कहना शुरू किया- "...कभी आपलोगों ने सोचा है कि इन नन्हें बच्चों के कोमल मन को कितनी चोट लगती होगी, कितनी पीड़ा होती होगी, ये आपलोगों के बारे में क्या सोचते होंगे...?" मास्टरजी के चेहरे पर अपनी ही कही गई बात की चुभन साफ-साफ दिखाई दे रही थी, मुखिया सहित सभी चुप थे।

मास्टरजी ने उसी तरह कहना जारी रखा- "...इनका नन्हा मन जब अपने माता-पिता या परिवार के किसी अन्य बड़े के लिए आपलोगों के द्वारा ऐसे ही शब्दों का प्रयोग सुनता होगा, तो इनका स्वाभिमान, इनका आत्म-सम्मान कैसे मरता होगा, कभी आपमें से किसी को इसका ख्याल भूले से भी आता होगा क्या...?" उस अध्यापक का क्रोध जैसे उनकी आँखों से, पीड़ा से भाप बनकर निकल पड़ने को उद्धत हो रहा था। मुखिया पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। "... इनके आत्म-सम्मान को कुचलकर इनके आत्म-विश्वास की तो आपलोग हत्या ही कर देते हैं, ऐसे रोज-रोज अपमानित करते हुए...! या शायद आपलोग यही चाहते होंगे कि इनका आत्म-विश्वास जिन्दा ही न रहे -न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी; न इनका आत्म-विश्वास जिन्दा रहेगा, न ये आपलोगों के सामने सिर उठाएँगे कभी! क्यों, ठीक कह रहा हूँ न मैं...?" उस ब्राह्मण मास्टर का स्वर ही नहीं, उसके चेहरे की भाव-भंगिमाएँ भी जैसे अपने ही पूर्वजों की बनाई हुई महान-संस्कृति और परम्पराओं पर और उनके उन 'सजातीय-रक्षकों' पर प्रश्नों के जलते गोले दाग रही थी।

"...इनके समाज के लोग आपलोगों के सदा से गुलाम रहे हैं। इनके ये बच्चे भी आपलोगों की, भोज में इनको अपने पास बिठाकर की जाने वाली ऐसी ही दया से आपलोगों के एहसानमंद होकर भविष्य में अपने माता-पिता की तरह आपलोगों की जी-हुजूरी करेंगे...! क्यों, ठीक कहा न मैंने...?" एक और जलता प्रश्न उन लोगों की ओर उछाल दिया मास्टरजी ने, जिसकी तपिश ने उन सबको बेचैन कर दिया। लेकिन वह ब्राह्मण-अध्यापक अपने ही सजातियों को बख्शने के मूड में नहीं था- "... आज आपको अपने अपमान का भय सता रहा है, मुखिया जी! आपको डर लग रहा है कि आप किसी को कैसे मुँह दिखाएँगे! लेकिन इन बच्चों के माता-पिता रोज उस अपमान को पीकर अपने बच्चों के सामने, पूरे समाज के सामने कैसे अपना सिर उठाते होंगे, सबको कैसे मुँह दिखाते होंगे; यह तो आपने कभी नहीं सोचा होगा! है ना...? अपने माता-पिता को अपमानित और तिरस्कृत होता देख ये बच्चे रोज ही किसी 'अनजानी अपराध-भावना' के शिकार होते हैं, शायद हमारा तथाकथित उच्चवर्णीय 'सभ्य-समाज' यही चाहता है कि ये अपने-आप को 'जन्मजात-अपराधी' ही समझें और सदैव इस तथाकथित सभ्य-समाज के सामने, आपलोगों के सामने, अपराधियों की तरह ही सिर झुकाए रहें...!" इतना कहकर मास्टरजी पुन: रुके, शायद वे अपने हृदय में दर्द महसूस कर रहे थे। उनकी आँखें जैसे अपने निर्दोष विद्यार्थियों की उन तकलीफों को अपने दिल में महसूस करके बरस जाना चाहती थीं, जिनको भोगने की नौबत, ब्राह्मण होने के कारण, कभी खुद उनके सामने नहीं आई थी, न कभी भोगा था।

मुखिया के इस समारोह में आनंद की प्राप्ति के लिए आए सभी आमो-खास मेहमानों में से किसी के मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे, क्योंकि सभी अपने 'सवर्णी सभ्य-हृदयों' के सच को जानते ही थे। मास्टरजी ने थोड़ा रुककर पुन: कहना शुरू किया- "एक बात और, कभी आप सभी, तथाकथित सभ्य-समाज के सुसंस्कृत लोग, कभी फुर्सत मिले एकांत में, तो सोचियेगा जरूर... कि आपलोगों के ऐसे व्यवहार से स्वयं आपके अपने ही बच्चों के मन पर क्या बीतती है। मैं चूँकि अपने प्रत्येक विद्यार्थी का शिक्षक हूँ, इसलिए अपने हर विद्यार्थी के मन को पढ़ सकता हूँ, उन्हें अच्छी तरह से जानता हूँ; आप माता-पिताओं की तुलना में कहीं अधिक! इसलिए मैं यह जानता हूँ कि आपके सभ्य-सुसंस्कृत उच्चवर्णीय-समाज में पैदा हुए आपलोगों के ही बच्चे आप लोगों के इन शर्मनाक व्यवहारों पर कैसा महसूस करते हैं और क्या सोचते हैं! ...जब आपके बच्चे अपने वंचितवर्गीय दोस्तों को, उनके माता-पिताओं को आपलोगों के द्वारा बेवजह अपमानित और तिरस्कृत होते देखते हैं, तो स्वयं उनके अपने मन में अपने माता-पिताओं द्वारा किए जा रहे इस अन्याय के प्रति कितनी शर्मिंदगी होती है, कितना अपराधबोध और कितनी नाराजगी! ...हम तथाकथित उच्चवर्णीय सभ्य-समाज के लोग अपराधबोध की भावना केवल वंचित-बच्चों के मन में ही नहीं भरते हैं, बल्कि अपने तथाकथित उच्चवर्णीय बच्चों के मन में भी भरते

हैं। बड़े होकर तो वंचित–समाज के बच्चे तो समझ जाते हैं कि उनका अपराधबोध बेवजह था और वे या उनके परिवारवाले अपराधी नहीं थे; लेकिन तथाकथित उच्चवर्ण के बच्चे बड़े होकर जब दुनिया देखते हैं तो उनको बचपन में मिला अपराधबोध कई गुणा होकर उनके दिलों को चीरता रहता है, जिसका कोई इलाज नहीं। कभी आपलोग जरूर सोचिए इसपर भी...!" मास्टरजी इतना कहकर चुप हो गए, जैसे अब उनके पास कुछ भी नहीं बचा हो कहने के लिए, जैसे किसी गहन निराशा ने उनको घेर लिया हो, मन की पीड़ा की रेखाएँ उनके चेहरे पर एकदम साफ–साफ दिखाई दे रही थीं। शायद उनको अपना ही बचपन और उस बचपन से जुड़ी अनकही यादें परेशान करने लगी थीं...

मुखिया और सभ्य–सुसंस्कृत उच्चवर्णीय लोगों पर घड़ों पानी पड़ चुका था, किसी के मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे, चारो ओर निस्तब्धता छाई थी। कुछ लोग शर्मिंदगी महसूस कर रहे थे, तो कुछ के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थी। जबकि भीड़ में कुछ अलग हटकर खड़े कुछ लोगों के चेहरों को देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे किसी ने सालों से उनके रिसते घावों पर शीतल मरहम का लेप लगा दिया हो, उनकी आँखें नम थीं, वे बड़ी ही कृतज्ञता और आदर–भाव से मास्टरजी को देख रहे थे–जाहिर है कि ये वंचित–समाज के लोग थे, जिनमें से कुछ के बच्चे मास्टरजी के विद्यार्थी थे। तभी मुखिया के बेटे को जैसे होश आया हो– "हम अब तक 'नीची जात, नीची जात' कहकर इन लोगों को (भीड़ में अलग खड़े उन्हीं वंचितों की ओर इशारा करके) दुत्कारते रहते थे, हमने कभी सोचा ही नहीं कि इन लोगों को कैसा महसूस होता होगा...! लेकिन जब आप हमें 'गंदा', 'बदबूदार जानवर' कह रहे हैं, हमें दुत्कार रहे हैं, तो हमसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है..! शायद भगवान हमें अपने ही किए की सजा दे रहे हैं...!"

मुखिया ने इतनी देर तक मास्टरजी की बात चुपचाप सुनने के बाद कहा– "मैं अपनी गलती समझ गया हूँ, मास्टरजी! मैंने भूल की है, बहुत बड़ी भूल! आपने मुझे सजा दे दी, सही ही किया; मैं आपकी दी हुई सजा को श्रद्धा से सिर झुकाकर स्वीकार करता हूँ और आपसे वादा करता हूँ कि कम–से–कम मेरा परिवार अब किसी के साथ ऐसा बुरा व्यवहार नहीं करेगा। आप बच्चों के मास्टरजी हैं, तो आज आपने एक सच्चे मास्टर की तरह हम तथाकथित सभ्य जाहिलों को भी अच्छा और जरूरी पाठ पढ़ाया है। आप मेरी जितनी भी भर्त्सना करना चाहें, जरूर कीजिए, मैं आपको नहीं रोकूँगा! बस एक ही प्रार्थना है कि आप इन बच्चों के मास्टरजी हैं, इनको भूखा मत ले जाइए, इनके मुरझाये उदास चेहरों की ओर देखिये। इनको भूखा भेजकर मैं खुद को माफ नहीं कर पाऊँगा।" मुखिया ने अब बहुत ही विनम्र–भाव से हाथ जोड़ लिये थे, अब उनके चेहरे पर वह पीड़ा नहीं थी, जो थोड़ी देर पहले अपमान के भय से उनके चेहरे पर चिपकी हुई थी, वहाँ अब शांति थी, जैसी पके घाव पर चीरा लग जाने और मवाद के निकल जाने के बाद होती है। और मास्टरजी की आँखों में संतोष की चमक थी, उन्होंने अपने अध्यापक होने का असली फर्ज आज पूरा किया था और उसका नतीजा देखकर उन्हें अपने पेशे पर संतुष्टि थी, जिसकी चमक उनकी आँखों में देखने लायक थी...❑

लेखकों के लिए संदर्भ निर्देश (Reference Guide for Authors)

हमारी पत्रिका की विश्वसनीयता और अकादमिक गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सभी लेखकों से अनुरोध है कि वे अपने लेखों में उपयोग किए गए उद्धरणों और तथ्यों के लिए निम्नलिखित प्रारूप का पालन करें।

1. पुस्तकों के लिए: यदि आप किसी पुस्तक सेजानकारी ले रहे हैं:

प्रारूप : लेखक का नाम, पुस्तक का शीर्षक, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन वर्ष।

उदाहरण:आंबेडकर, बी. आर., बुद्ध और उनका धम्म, सिद्धार्थ प्रकाशन, प्रकाशन का वर्ष।

2. लेख या निबंध के लिए: यदि जानकारी किसी अन्य पत्रिका या संकलन से ली गई है:

प्रारूप : लेखक का नाम, 'लेख का शीर्षक', पत्रिका/संकलन का नाम, अंक/खंड, वर्ष, पृष्ठ संख्या।

उदाहरण : राहुल सांकृत्यायन. बुद्ध का दर्शन. धाम्म–चक्र, अंक 4, 1944, पृ. 12–15.

3. ऑनलाइन स्रोतों के लिए (Websidtes/E-Journals) यदि जानकारी इंटरनेट से ली गई है:

प्रारूप : लेखक का नाम. 'लेख का शीर्षक'. वेबसाइट का नाम, तिथि, URL.

उदाहरण : प्रकाशक. 'अशोक के शिलालेख'.धम्म–लिपि, 10 जनवरी 2024, (वेबसाइट का लिंक दें।)

लेख के बीच में संदर्भ (In-Text Citation) लेख लिखते समय जहाँ भी आप किसी के कथन का उपयोग करें, वहाँ ब्रैकेट में लेखक का नाम और पेज नंबर अवश्य लिखे। उदाहरण : 'प्रथमत: भारतीय और अंतत: भारतीय हूँ' (आंबेडकर 82)